International Journal of Applied Research 2019; 5(7): 248-250

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(7): 248-250
www.allresearchjournal.com
Received: 26-05-2019
Accepted: 30-06-2019

डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर
मध्य विद्यालय प्रखण्ड कॉलोनी, नाथनगर, भागलपुर, बिहार, भारत।

Correspondence
डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर
मध्य विद्यालय प्रखण्ड कॉलोनी, नाथनगर, भागलपुर, बिहार, भारत।

भक्तिसाहित्य में संगीत का स्थान

डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर

प्रस्तावना

भज् सेवायाम् धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाकर भक्ति शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका अर्थ है– तत्परतापूर्वक सेवा करना या भजना। अर्थात् भगवान् के नाम या गुणों का सच्चे हृदय से गुणगान करना ही भक्ति है। इस सम्बन्ध में शाण्डिल्य ने अपने भक्ति सूत्र में कहा है– 'सा परानुरक्तिरीश्वरे'।[1] भगवान् के गुणगान करने में भक्त अपना सर्वस्व भगवान् पर ही न्योछावर कर देते हैं अन्यथा सच्ची भक्ति नहीं हो पाती है। भक्ति के सम्बन्ध में नारदभक्तिसूत्र में भी कहा गया है– 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरुपा'।[2]

भक्ति के अनेक साहित्य ग्रन्थ हैं फिर भी संस्कृत भाषा में श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, महाभारत, पाञ्चरात्र, भक्तिरसामृतसिन्धु, शाण्डिल्यभक्तिसूत्र, नारदभक्तिसूत्र इत्यादि प्रमुख हैं। इनमें भी श्रीमद्भागवत शिरोमणि ग्रन्थ है।

भक्ति साहित्य में संगीत भक्ति का प्राण है, क्योंकि जैसे ही कोई भगवान् के गुणों का गुणगान करता है, वह गुणगान या स्तुति स्वतः ही संगीत का रुप ले लेती है। उदाहरणार्थ–

''त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव।।''

भगवान् के नाम कीर्तन में स्वतः ही संगीत का राग या लय आ जाता है और संगीत में राग–ताल मात्र का ही संयोग होता है। प्रस्तुत शोध पत्र ''भक्तिसाहित्य में संगीत का स्थान'' नामक शीर्षक में भक्तिसाहित्य के प्रमुख ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में संगीत के निरुपण को संक्षेप में दिखाया जायेगा।

भक्तिसाहित्य में संगीत का तात्पर्य गीत से ही लिया जाता है क्योंकि वाद्य तो केवल गीत के सहकारी रुप में आता है। इसके साथ ही भक्ति के विभाव के रुप में श्रीकृष्ण की मुरली–ध्वनि संगीत का ही परिचायक है, जिसका श्रीमद्भागवत में विशेष स्थान है–

''तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्।
काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्।।''[3]

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का वेणुगीत नामक 21वाँ अध्याय वेणुनाद के व्यापक प्रभाव को दिखलाता है–

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम्।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे।।[4]

श्रीमद्भागवत के रासलीला के प्रसंग में गीत, वाद्य और नृत्य–इन तीनों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। इस प्रसंग में कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण के सौन्दर्य पर गोपियाँ इस प्रकार मोहित हो गयी है कि वह हमेशा अपना सर्वस्व छोड़कर श्रीकृष्ण के चरणों और उनके नयनों के बीच ही रहना चाहती है। गोपियों की अन्यन्य भक्ति से जब श्रीकृष्ण का हृदय खिल उठता है तब भगवान् गोपियों के सौन्दर्य के गीत गाने लगते हैं और गोपियाँ भी भगवान् के गुण और लीलाओं का गान झुम–झुम कर करने लगती है। यहाँ गीत, वाद्य और नृत्य का संगम द्रष्टव्य होता है–

''उपगीयमान उद्गायन वनिताशतयूथपः
मालां बिभ्रद् वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन् वनम्।।''[5]

भक्तिपरक गीतगोविन्द नामक काव्य में भी संगीत का ही पग–पग प्रयोग है। श्रीजयदेव कवि भगवान् विष्णु की भक्ति में इस प्रकार भावविभोर हो जाते हैं कि उनके दशावतारों में गीत ही गीत भरा हुआ है जिसके कारण गीतगोविन्द नाम भी पड़ा। इस ग्रन्थ में कवि जयदेव ने यहाँ तक कह दिया है कि गीतगोविन्द का श्लोक पढ़ने से पाठक को जिस रस का रसास्वादन होता है वह रसास्वादन अंगूर खाने पर भी नहीं होता है। गीतगोविन्द के सारे गीत निश्चय ही पाठक को संगीत के रस में सरावोर करने वाली है। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य–

''प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्।
विहितवहित्रचरित्रमखेदम्।।
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे।।''[6]

इसके साथ ही जयदेव कवि की अष्टपदी गीतों से सरावोर है जो पाठक और श्रोता के मन को आनंदित कर देता है। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है–

''ललित लवङ्ग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजति कुञ्ज कुटीरे।।''
उन्मद मदन मनोरथ पथिक वधूजन जनितविलापे।
अलिकुल सङ्कुल कुसुम समूह निराकुल बकुलकलापे।।''[7]

श्रीमद्भगवद्गीता के विषय में श्रीमद्भागवत ने भी पुष्ट किया है कि जब अर्जुन को भगवान् कृष्ण ने युद्ध के प्रारम्भ में ही गीता का जो उपदेश दिया था वह उपदेश अर्जुन कर्मों के विस्तार के कारण प्रमादवश कुछ दिनों के लिए भूल गये थे लेकिन जब अर्जुन भगवान् की भक्ति में अहर्निश एकाकार हो गये तब उस भक्ति के वेग ने ही अर्जुन के सभी विकारों को उनके अन्तःकरण से बाहर कर दिया–

''कृष्ण कृष्ण महाबाहो भक्तानामभयंकरः।
त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः।।''[8]

प्रस्तुत श्लोक में कृष्ण के उपदेशात्मक वाणी को सुनकर अर्जुन कृष्णमय हो गये। एतादृक श्लोकों में गेयता सर्वत्र दिखाई पड़ती है। गीता नामकरण इसी अन्तर्निहित गेयात्मकता के आधार पर ही प्रसिद्ध है– ''गेयं गीता नाम सहस्रं.....भज गोविन्दम् गोविन्दम् भज मूढ़ मते''। [9]
श्रीमद्भागवत में अनेकानेक बार भगवान् का गुणगान अथवा यशोगान का जो उल्लेख है, वहाँ यह आवश्यक नहीं कि स्वरतालयुक्त गायन हो। तन्मयता, प्रशंसा, अनुराग, ऐकान्तिका, अन्तर्मुखता और पौनः पुन्य आदि अनेक आन्तरिक भाव गान के लाक्षणिक अर्थ में अभिप्रेत होता है। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत की प्रस्तुत उक्ति श्लाघनीय है–

''गीतं भगवाता ज्ञानं यत् तत् सङ्ग्राममूर्धनि।
कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद् विभुः।।''[10]

भक्तिसाहित्य श्रीमद्भागवत में गान का प्रयोग पग–पग पर दृष्टिगोचर होता है। जब राजा परीक्षित् दिग्विजय के लिए निकलते हैं तब वे अपने पूर्वजों के यशोगान का श्रवण मन्त्रमुग्ध होकर करते हैं, जिसके सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत की यह उक्ति निभालनीय प्रतीत होता है–

''तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम्।
प्रगीयमाणं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम्।।''[11]

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु में भी गायन शब्द का प्रयोग बहुत ही सहजरुप में हुआ है। इसमें सर्वत्र भक्तिपरक संगीत का प्रयोग गायन के रुप में मिलता है। अतएव श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु में साधनभक्ति के चौसठ अंगों में 32वाँ अंग गीत कहा गया है–

''अर्चनं परिचर्या च गीतं सङ्कीर्तनं जपः।''[12]

श्रीमद्भागवत में साधक और सिद्धभक्तों द्वारा गान का प्रयोग अक्षरशः मिलता है। इस ग्रन्थ में दशम स्कन्ध के 35वें अध्याय में संगीत के कुछ परिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस संगीत की बात वहाँ कही गई है, वह काफी प्राचीन संगीत है। ये शब्द हैं– स्वरजाति, अमिश्रिता स्वरजाति, मार्ग और ध्रुव। इसमें स्वरजाति संज्ञा का प्रयोग नाट्यशास्त्र में हुआ है। ये दो प्रकार के होते हैं– शुद्धा और विकृता। शुद्धा को ही यहाँ अमिश्रिता कहा गया है। यहाँ जाति का प्रयोग 'राग' के अर्थ में है। उसी प्रकार 'मार्ग' शब्द भी प्राचीन ताल–पद्धति का रुप है। 'ध्रुव' शब्द अवश्य ही नाट्यशास्त्र का परवर्ती है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में रास के समय भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्हित हो जाने पर गोपियाँ परस्पर मिलकर ऊँचे स्वर में श्रीकृष्ण के गुणों का गान निम्नलिखित रुप में करने लगी–

''गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता
विचिक्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम्।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहि–
र्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन्।।''[13]

श्रीमद्भागवत में नवधा भक्ति के अन्तर्गत श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन आता है, जिसमें द्वितीय भक्ति 'कीर्तन' है जहाँ व्याख्यान, लाक्षणिक गान और स्वर–लय युक्त गायन–इन तीनों का समावेश है। अतएव कहा गया है–

''श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।''[14]

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के 31वें अध्याय में 'गोपीगीत' का चित्रण बहुत ही मार्मिक एवं हृदयभेदी ढंग से हुआ है। गोपियाँ हमेशा श्रीकृष्ण के पास ही रहना चाहती है। वे श्रीकृष्ण के आँखों से ओझल होना क्षणभर भी नहीं चाहती है। गोपियाँ तो अपने पति, पिता, पुत्रादि परिवार को भी छोड़कर सिर्फ श्रीकृष्ण में ही रमण करना चाहती है। श्रीकृष्ण के विरह में गोपिकाओं की दशा और दिशा दोनों मलीन एवं आनन्दविहीन हो गया है। गोपियाँ तो हमेशा श्रीकृष्ण के मिलन के खोज में लगी रहती है और उनके सौन्दर्य एवं गुणों का बखान करती हुई विरह की गीत गाती रहती है–

''मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया।
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती–
रधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः।।''[15]

श्रीमद्भागवत भक्तिगीतों से सरावोर ग्रन्थ है। इस भक्तिग्रन्थ के दशम स्कन्ध के 47वें अध्याय में तो 'भ्रमरगीत' का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। गोपियाँ श्रीकृष्ण के विरह में हमेशा व्याकुल और उदास रहती हैं। वे श्रीकृष्ण का एक मात्र झलक चाहती है। एकबार जब श्रीकृष्ण के सेवक एवं सखा उद्धवजी श्रीकृष्ण की ही आकृति तथा वेषभूषा में भगवान् का सन्देश लेकर गोपियों के पास आते हैं तब गोपियाँ भाव–विह्वल होकर उद्धवजी का सत्कार करती है और श्रीकृष्ण के गुणों तथा लीलाओं को याद करती हुई

भगवान् का गान करने लगी तथा फूट–फूटकर रोने लगी। तभी गोपियों ने एक गुनगुनाते हुए भौरे को पास देखकर यह समझ गयी कि श्रीकृष्ण ने ही हमलोगों को रुठे हुए देखकर मनाने के लिए इसे दूत के रुप में भेजा है। इसके पश्चात् गोपियाँ श्रीकृष्ण की विरह–वेदना में 'भ्रमरगीत' गाने लगी–

''मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक्।।''[16]

वस्तुतः गोपियों का श्रीकृष्ण की विरह–वेदना में 'भ्रमरगीत' हृदय को उद्वेलित करनेवाला तथा मर्मस्पर्शी है, जो सबके दिल को झकझोर देने वाला है। 'भ्रमरगीत' के समान ही गोपियों का 'युगलगीत' भी श्रीकृष्ण की विरह–वेदना में चारचाँद लगाता है।
उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भक्तों के द्वारा भगवत् स्मरण से चित्त की द्रवावस्था में सहज ही गीत के निर्झर फूट पड़ते हैं। उसका आनन्दोल्लास नृत्य के रुप में भी स्फुट हो उठता है। भक्ति की सहज अभिव्यक्ति संगीत में ही होती है। श्रीमद्भागवत के वेणुगीत, गोपीगीत, भ्रमरगीत से निःसृत गीतप्रधान भक्तिधारा को परिपुष्ट करते हुए हरिदास, सूर, रैदास, मीरा की भक्तिपरंपरा का प्राणतत्व गीत एवं संगीत ही है। ''रसो वै सः'' की औपनिषदिक अवधारणा क्या कभी संगीत विहीन हो सकती है? भक्ति की प्रेरणा से ही देश के कोने–कोने में प्रवचन, गान और नृत्य नाट्य के स्वतंत्र अथवा मिले–जूले रूपों का विस्तार आज भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

सन्दर्भ

1. शाण्डिल्यभक्तिसूत्र– 02
2. नारदभक्तिसूत्र– 02
3. श्रीमद्भागवत– 10/21/03
4. श्रीमद्भागवत– 10/21/06
5. श्रीमद्भागवत– 10/29/44
6. गीतगोविन्दम् – मीनावतार
7. जयदेव कवि की अष्टपदी
8. भागवत– 01/07/22
9. आदिगुरु शंकराचार्य–भजगोविन्दम्
10. श्रीमद्भागवत– 01/15/30
11. श्रीमद्भागवत– 01/16/13
12. श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु– 01/02/84
13. श्रीमद्भागवत– 10/30/04
14. श्रीमद्भागवत– 07/05/23
15. श्रीमद्भागवत– 10/31/08
16. श्रीमद्भागवत– 10/47/12